Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

वैशेषिक दर्शन में कर्म की अवधारणा

डॉ0उधम मौर्य
(भूतपूर्व शोधछात्र)
दर्शन एवं धर्म विभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसीएउत्तर प्रदेशएभारत।

सारांश : वैशेषिक दर्शन सप्तपदार्थवादी है। इस में कर्म क्रिया का पर्याय है। जो द्रव्य पर आश्रित रहने वाला धर्म है। यह मूर्त द्रव्यों में रहता है। यह हमेशा किसी द्रव्य के आश्रय में रहता है। किसी गुण का आश्रय नहीं होता। इस दर्शन में कर्म के तीन लक्षण बताये गये हैं– एकद्रव्यत्व, निर्गुणत्व और संयोगविभागानपेक्षत्व। वैशेषिक दर्शन की मान्यता है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को, एक गुण दूसरे गुण को उत्पन्न करता है, किन्तु एक कर्म दूसरे कर्म से उत्पन्न नहीं होता है। इस दर्शन में कर्म पाँच प्रकार के माने गये हैं– उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण, और गमन।

मुख्य शब्द : संयोग, विभाग, क्षणिकत्व, नित्य, काम्य एवं नैमित्तिक, संयोगविभागण्वनपेक्षकारण, अदृष्टजन्य, मानसगमन एवं प्रत्यागमन।

भारतीय दर्शन के प्राचीनतम सम्प्रदायों में वैशेषिक दर्शन का स्थान अन्यतम है। इस दर्शन के प्रतिष्ठापक महर्षि कणाद हैं, जिनको काश्यप, उलूक और औलूक्य आदि नामों से भी जाना जाता है। आचार्य प्रशस्तपाद ने अपने ग्रन्थ 'पदार्थ–धर्म–संग्रह' के अन्त में लिखा है कि महर्षि कणाद कणभुक् ने यौगिक सदाचार से महेश्वर को प्रसन्न करके, उनकी की कृपा से वैशेषिक शास्त्र का निर्माण किया।

वैशेषिक दर्शन सप्तपदार्थवादी है। यह छः भावात्मक– द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय एवं अभाव नामक एक अभावात्मक पदार्थ को मानता है। यद्यपि वैशेषिक सूत्र में केवल छः भावात्मक पदार्थों का वर्णन मिलता है किन्तु परवर्ती आचार्यों ने अभाव को भी ण्क पदार्थ मान लिया। वैशेषिक दर्शन ने न्याय दर्शन की ज्ञानमीमांसा और न्याय दर्शन ने वैशेषिक की तत्वमीमांसा को स्वीकार लिया। इस प्रकार से दोनों संयुक्त रूप से न्याय–वैशेषिक दर्शन बन गये। कर्म वैशेषिक दर्शन द्वारा स्वीकृत सात पदार्थों में से तीसरा पदार्थ है। वैशेषिक दर्शन में कर्म शब्द क्रिया का पर्याय है। यह द्रव्य पर आश्रित रहने वाला धर्म है। यह वस्तुओं के संयोग तथा विभाग का कारण है। यह मूर्त द्रव्यों में रहता है। इस जगत् की गतिमान की व्याख्या कर्म के आधार पर की जाती है। 'कर्म' पद का प्रयोग विभिन्न शास्त्रों में, मनुष्य द्वारा किये जाने वाले कर्मों को भिन्न–भिन्न अर्थों में किया गया है, यथा– भगवद्गीता के अनुसार कर्म–सात्विक, राजस एवं तामस तीन प्रकार के होते है। एक अन्य दृष्टि से फल की इच्छा को रखकर मनुष्यों द्वारा जो धर्माधात्मक कार्य किये जाते हैं, वे कर्म कहे जाते है। वैशेषिक दर्शन में कर्म का प्रयोग क्रिया के रूप में किया गया, जो वस्तुओं के संयोग और विभाग का कारण है मीमांसकों के अनुसार कर्म त्रिविध होते हैं–नित्य, काम्य एवं नैमित्तिक। वेदान्तियों के अनुसार कर्म संचित व प्रारब्ध भेद से द्विविध होते हैं। व्याकरण शास्त्र में कर्म का प्रयोग कारक अर्थ में होता है। अस प्रकार वैशेषिक दर्शन में प्रतिपादित कर्म पदार्थ का स्वरूप उक्त सभी मान्यताओं से पृथक है।

महर्षि कणाद ने कर्म का लक्षण बताते हुए कहा है कि जो एक द्रव्याश्रित गुण से रहित संयोग और विभाग को उत्पन्न करने में अपने से उत्तरभाषी किसी भाव पदार्थ की अपेक्षा न करता हुआ, कारण है उसको कर्म कहते हैं।[1] इसकी व्याख्या करते हुए आचार्य प्रशस्तपाद कहते हैं कि जो संयोग और विभाग की भाँति दो द्रव्यों के आश्रित नहीं रहता है, उसका नाम 'एकद्रव्य', जिसमें कोई गुण नहीं रहता उसका नाम 'अगुण' तथा जो संयोग और विभाग कां उत्पन्न करने में अपनी उत्पत्ति से अनन्तर उत्पन्न होने वाले भाव पदार्थ की अपेक्षा नहीं करता वह 'संयोगविभागण्वनपेक्षकारण' है। इन तीनों के मिलने से कर्म का यह लक्षण निष्पन्न होता है कि जो द्रव्यों के परस्पर संयोग और विभाग को उत्पन्न करता है और उससे उत्पन्न होने वाले समवायी द्रव्य तथा पूर्व संयोग नाश की अपेक्षा करता हुआ, अपनी उत्पत्ति के पश्चात् उत्पन्न होने वाले किसी भाव पदार्थ की अपेक्षा नहीं करता और हमेशा एक द्रव्य के आश्रय में रहता है और किसी गुण का आश्रय नहीं होता उसे 'कर्म' कहते हैं।

वैशेषिक दर्शन में कर्म के लक्षण के लिए तीन विशेषणों का प्रयोग किया गया है– एकद्रव्यत्व, निर्गुणत्व और संयोगविभागानपेक्षत्व। आचार्य प्रशस्तपाद ने कर्म के पाँचों भेदों में रहने वाली कर्मत्व जाति को समझाने के लिए तेरह साधर्म्य बताये हैं–

कर्मत्व जाति के साथ सम्बन्ध।

एक समय में एक ही द्रव्य में रहना।

क्षणिकत्व।

मूर्त द्रव्यों में रहना।

गुणरहित्व।

गुरूत्व, द्रव्यत्व, प्रयत्न और संयोग इन चार गुणों से उत्पन्न होना।

अपने द्वारा उत्पन्न संयोग से नष्ट होना।

किसी और के साहाय्य के बिना संयोग और विभाग को उत्पन्न करना।

असमवायिकारणत्व।

अपने आश्रय रूप द्रव्य एवं उनसे भिन्न द्रव्य इन दोनों में समवाय सम्बन्ध से

रहने वाले संयोग और विभाग को उत्पन्न करना।

अपने समानजातीय वस्तु को उत्पन्न न करना।

नियमित उत्क्षेपणत्ववादि जातियों का सम्बन्ध।

दिग्विशिष्ट कार्य का कर्त्तृत्व।[2]

वैशेषिक दर्शन में कर्मों का वर्गीकरण करते हुए, उन्हें दो वर्गों में बाँटा गया है–

1.संयोगाजन्य क्रियाएँ : इस वर्ग में आने वाली क्रियाएं चार हेतुओं से जन्य होती है–

• **प्रयत्नजन्य :** प्रयत्न से उत्पन्न होने वाली क्रियाएं जैसे भोजन इत्यादि उठाने के लिए व्यक्ति के हाथ में होने वाली क्रिया।

• **गुरुत्वजन्य :** संयोग के बिना ही उत्पन्न होने वाली क्रिया को किसी गिरती हुई वस्तु में देखा जा सकता है, जैसे– संयोग के अभाव में गुरुत्व के कारण वृक्ष से फल का पतन।[3]

• **स्यन्दनजन्य :** द्रव द्रव्यों के निम्नाभिमुख प्रवाह को वैशेषिक दर्शन में स्यन्दन कहा गया है। सूत्रकार के अनुसार इसकी उत्पत्ति 'द्रवत्व' गुण से होती है।[4]

• **अदृष्टजन्य :** कुछ ऐसे भी कर्म हैं जो भूतद्रव्यों के साथ बिना संयोग के ही उत्पन्न होते हैं और जिनका कोई स्पष्ट भौतिक कारण ज्ञात नहीं होता, उन सब कर्मों को वैशेषिक दर्शन में अंतिम कारण 'अदृष्ट' से जोड़ा गया है जैसे–?

1. **भूकम्प अदृष्टजन्य :** महर्षि कणाद का मत है कि पृथिवी द्रव्य में होने वाले सामान्य कर्म नोदन एवं अभिघात नामक विशेष संयोग से उत्पन्न होते हैं[5] किन्तु कुछ पार्थिव क्रियाएँ जैसे भूकम्प आदि ऐसी हैं, जो बिना नोदन और अभिघात के ही होती है। अतः इन क्रियाओं का अयमवायिकारण 'अदृष्ट' है।
2. **वृक्षाभिसर्पण भी अदृष्टकृत :** वृक्ष के मूल में सींचा गया जल वृक्ष के मध्यभाग से चारो ओर उर्ध्वप्रदेशों में चढ़ता है। अतः वहाँ भोक्ता प्राणियों का अदृष्ट ही कारण है।
3. **मानस उपसर्पण अदृष्टकृत :** आचार्य प्रशस्तपाद का मत है कि मन की उपसर्पण और अपसर्पण नामक दोनों क्रियाएँ आत्मा और मन के संयोग से होती है, जिसमें अदृष्ट ही निमित्त कारण होता है।[6]
4. **मानसगमन एवं प्रत्यागमन अदृष्टप्रेरित :** योगियो के योग बल से बाहर निकले हुए मन की अभीष्ट देश में गमन और प्रत्यागमन क्रियाएँ अदृष्ट से ही उत्पन्न होती है।

2. संयोगजन्य क्रियाएँ : वैशेषिक दर्शन के अनुसार द्वितीय श्रेणी के कर्म वे हैं जो संयोग से उत्पन्न होते हैं किन्तु वे संयोग भिन्न– भिन्न प्रकार के होते हैं। जैसे–

• **नोदनजन्य :** नोदन उस संयोग विशेष का नाम है जो कभी सम्मिलित रूप में गुरूत्व, द्रव्यत्व, वेग और प्रयत्न इन चार गुणों से उत्पन्न होता है। यह विभाग को उत्पन्न न करने वालम कर्म का कारण है। इसी से चारों महाभूतों में क्रिया उत्पन्न होती है।[7]

• **अभिजातजन्य :** अभिजात उस विशेष प्रकार के संयोग का नाम है, जो वेग की सहायता से विभाग को उत्पन्न करने वाले कर्म का कारण है। इससे भी चारों महाभूतों में क्रियाओं की उत्पत्ति होती है– जैसे पत्थर आदि कठोर द्रव्य पर गिरे हुए द्रव्यों में क्रिया की उत्पत्ति देखी जाती है।

• **स्थितिस्थापकत्वजन्य :** वे कर्म जो किसी स्थितिस्थापकतायुक्त द्रव्य के साथ संयोग होने पर उस द्रव्य से जन्म लेते हैं। जैसे– कोई मनुष्य तीर चलाने की इच्छा से धनुष की डोरी को कान तक खींचकर ले जाता है तथा जब कर्ण पर्यन्त धनुष खींच लिए जाने पर, यह इससे आगे नहीं जायेगा, ऐसा उस पुरुष को ज्ञात होता है।[8]

• **वेगजन्य :** वेग वह संयोगजन्य कर्म है, जो किसी ऐसे द्रव्य के साथ सम्पर्क होने से उत्पन्न होता है, जो स्वयं किसी दूसरे वेगवान द्रव्य के साथ संयुक्त होता है। वेग से द्रव्य में तब तक क्रिया उत्पन्न होती रहती है, जब तक वह द्रव्य में गिर नहीं जाता है। क्रियाओं के सातत्य की व्याख्या वेग के आधार पर ही हो सकती है। अतः किसी द्रव्य में होने वाली प्रथम क्रिया से वेग संस्कार की उत्पत्ति मानी गयी है।

वैशेषिक दर्शन में कर्म पाँच प्रकार के माने गये हैं। ऊपर फेकने का नाम 'उत्क्षेपण', नीचे की ओर जाने का नाम 'अवक्षेपण', संकोच करने का नाम 'आकुंचन', फैलाने का नाम प्रसारण और चलने का नाम 'गमन' है। भ्रमण, रेचन, स्पन्दन, उर्ध्वज्वलन और तिर्थ्यग्गमन यह पाँचों कर्म गमनात्मक कर्म के अन्तर्भूत है।

इसलिए पाँच ही कर्म माने गये हैं। वैशेषिक दर्शन के परवर्ती आचार्यों ने कर्मै की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह कर्म विशेष अर्थ में कहे गये हैं–

उत्क्षेपण : आचार्य प्रशस्तपाद का मत है कि जो कर्म शरीर के अवयव एवं उससे संयुक्त और द्रव्यों का ऊपर के द्रश के साथ संयोग का कारण हो तथा नीचे के प्रदेशों के साथ विभाग का भी कारण हो एवं गुरुत्व, प्रयत्न और संयोग से उत्पन्न हो, उसी को उत्क्षेपण कहते हैं।[10] उदयनाचार्य के अनुसार अधोप्रदेश के साथ विभाग एवं उर्ध्वप्रदेश के साथ संयोग को उत्पन्न करने वाला कर्म उत्क्षेपण है।

अवक्षेपण : संयोग और विभाग के कारणभूत एवं उत्क्षेपण के विपरित कर्म को अवक्षेपण कहते हैं।[11] व्योमवतीकार का मत है कि उर्ध्वप्रदेशों के साथ विभाग का कारण तथा अधोप्रदेशों के साथ संयोग का कारण अपक्षेपण है।[12] उपस्कार के रचयिता शंकर मिश्र का मत है कि उर्ध्वप्रदेश में गये हस्त और मूसल दोनों को नीचे फेंकने की इच्छा से उत्पन्न प्रयत्नवान आत्मा के संयोग तथा हस्त के नोदन संयोग से एक ही समय से हस्त और मूसल में नीचे की क्रिया होती है, वही अवक्षेपण है।[13]

आकुंचन : आचार्य प्रशस्तपाद के अनुसार द्रव्य द्रव्य के अग्रिम अवयवों का उसके आश्रय प्रदेशों के साथ विभाग एवं मूल प्रदेशों के साथ संयोग जिस क्रिया से हो, उसी को आकुंचन कहते हैं।[14] व्योमवतीकार एवं कन्दलीकार का मत है कि सरल द्रव्य के आगे जो अवयव है, उनका उन अग्रावयवों से सम्बद्ध 'आकाशादि' के साथ विभाग तथा सरल द्रव्य के मूल प्रदेश के साथ संयोग जिस कर्म से उत्पन्न होता है एवं जिससे सरल अवयवी भी कुटिल हो जाता है, वही क्रिया आकुंचन है।

प्रसारण : आचार्य प्रशस्तपाद का मत है कि आकुंचन क्रिया के विपरित जिस क्रिया से संयोग और विभाग उत्पत्ति होने पर अवयवी सीधा हो जाता है, वह प्रसारण है।[15] तात्पर्य यह है कि जब किसी क्रिया के द्वारा संयोग और विभाग की उत्पत्ति होने पर अवयवी द्रव्य का अपने मूल प्रदेश के साथ विभाग एवं अग्रप्रदेशों के साथ संयोग होता है, और वह अवयवी टेढ़ा हो जाने पर भी सीधा हो जाता है, उस क्रिया को प्रसारण कहते है।

गमन : जो क्रिया अनियमित रूप से जिस किसी दिक् प्रदेश के साथ संयोग और विभाग को उत्पन्न करे, उसे गमन कहते हैं। शंकर मिश्र ने कणाद रहस्य में गमन को बताते हुए कहा है कि जहाँ नियत दिग्देश में संयोग–विभाग उपलब्ध नहीं होते, जैसे मनुष्य, पक्षी, सरीसृप आदि अवयवियों का अनियत दिग्देश में संयोग और विभाग होने पर जब वह जाता है, केवल इतना प्रतीत होता है, तब उस प्रतीति का वैलक्षण्य प्रत्येतव्य के वैलक्षण्याधीन होता है, वहाँ गमन सिद्ध होता है।

वैशेषिक दर्शन की मान्यता है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को, एक गुण दूसरे गुण को उत्पन्न करता है, किन्तु एक कर्म दूसरे कर्म से उत्पन्न नहीं होता है।[16] इसका कारण यह है कि पूर्व क्रिया के द्वितीय क्षण में कर्म की उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि वहाँ पूर्व क्रियाजन्य विभाग से पूर्व संयोग तो नष्ट हो चूका है। अतः वहाँ द्वितीय क्रिया की उत्पत्ति का कोई प्रयोजन नहीं है। अतः यह सिद्धान्त संगत है कि एक कर्म दूसरे कर्म को उत्पन्न नहीं करता है।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार कर्म द्रव्य, गुण आदि भिन्न एक सत् पदार्थ है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है। अतः इसकी सत्ता प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध होती है। इस विषय में शंकर मिश्र का मत है कि जब कर्म स्पर्श–योग्य द्रव्यों में पाया जाता है, तब उसका स्पार्शन प्रत्यक्ष भी होता है।

इस प्रकार वैशेषिक दर्शन ने कर्म को क्रिया का पर्याय मानते हुए, इस जगत् की गतिमान वस्तुओं की व्याख्या के कर्म को एक स्वतन्त्र पदार्थ के रूप में मान्यता दी है। कर्म का क्रिया के पर्याय के रूप में ऐसा विशद् एवं सूक्ष्म वर्णन और किसी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय में नहीं किया गया है।

संदर्भ :

1. एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेण्वनपेक्षकारणमितिकर्मलक्षणम्। वैशेषिक सूत्र–1.1.17
2. प्रशस्तपाद भाष्य– पृ0 697–98
3. संयोगााभावे गुरूत्वात पतनम्। वैशेषिक सूत्र–5.1.4
4. द्रवत्ववात स्पन्दनम्। वैशेषिक सूत्र–5.2.4
5. नोदनाभिघातात् संयुक्तसंयोगाच्च पृथिव्याकर्म। वैशेषिक सूत्र–5.2.1
6. प्रशस्तपाद भाष्य– पृ0 736
7. प्रशस्तपाद भाष्य– पृ0 726
8. प्रशस्तपाद भाष्य– पृ0 727
9. उत्क्षेपणमवक्षेपणाकुंचनं प्रसारणमं गमनमिति कर्माणि। वैशेषिक सूत्र–1.1.7
10. प्रशस्तपाद भाष्य– पृ0699
11. प्रशस्तपाद भाष्य– पृ0700
12. उर्ध्वभाग्भिर्विभागाधोदश संयोगजनकं कर्मापक्षेपणम्। व्योमवती, पृ0 654
13. वैशेषिक सूत्रोपस्कार, पृ0 40–41
14. प्रशस्तपाद भाष्य– पृ0700
15. प्रशस्तपाद भाष्य– पृ0700
16. द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते, गुणाश्च गुणान्तरम्। तथा कर्म कर्म साध्यं न विद्यते। वैशेषिक सूत्र–1.1.10–11